मनुष्य बनो

लेखक
लाल फकीरचन्दजी महाराज
मानवता मन्दिर होशियारपुर (पंजाब)

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टि-कोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है। मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की बाणी को सरल,सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायगा।

४—किसी धर्म,पंथ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ साफ अवश्य लिखना चाहिये। उत्तर के लिये जवाबी कार्ड आना चाहियें। वी०पी० पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायगी। इसका वार्षिक मूल्य ४-५० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुँचे तो पहले अपने यहां डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर मिले वह अगला अंक निकलने से एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुँचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजने चाहिये। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफसाफ लिखना चाहिये। और पते की तबदीली भी।

देवीचरन मीतल

सम्पादक

R.S.

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं: पूर्णात्पूर्णं मदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ।।

❀ मनुष्य बनो ❀

वर्ष २२	आश्विन सं० २०३० वि० नवम्बर १९७३	संख्या २/२५१

सतगुरु के चरण कमल में

बन्दना

जय रूप भूप अनूप निर्गुण, सगुण गुणकारी प्रभू ।
जय अजर अमर अतीत, शोभा सिंधु हितकारी प्रभू ।।
नहीं भेद तेरा कोई जाने, ज्ञान धन धरणी धरम् ।
तू मंत्र जंत्र है तंत्र गोप है, संत जन मन रंजनम् ।।
जो प्रगट गुप्त अशोच निर्मल, असम सम शीतल सदा ।
सोई नाथ करुणा पुंज कीजै, दास सेवक पर दया ।।
वार पार अपार मध्य, अनन्त आदि विश्वेश्वरम् ।
तेरी बन्दना करें भक्त निशदिन, काम खल दल गंजनम् ।।
जेहि नेति नेति पुकारें अगम, निगम न भेद कोई पावहीं ।
जप जोग त्याग विराग संयुत, योगी ऋषी मुनी ध्यावहीं ।।

मनुष्य बनो के ग्राहकों के प्रति

पिछले वर्षों में इस ख्याल से कि ग्राहक महोदय अपने आप इसका चन्दा भेज देंगे, हम बराबर उनको मनुष्य बनो भेजते रहे मगर अनुभव यह हुआ कि कई कई चिट्ठी भी लिखी गईं, मगर उन्होंने चन्दा नहीं भेजा। अन्त में उनको पत्रिका तो बन्द करनी ही पड़ी मगर चन्दा भी मारा गया। ऐसी स्थिति में सब ग्राहक बन्धुओं से निवेदन है कि वे अपना चन्दा तुरन्त भेज दें ताकि बार बार चिट्ठी लिखने में समय और डाक व्यय न हो और इसका काम भी चलता रहे। आशा है ग्राहक जन इस ओर पूरा ध्यान देंगे।

परमदयाल जी का शीलवाड़ा (राज०)

में ता० २३, २४, २५ को सत्संग होगा। प्रेमी जन वहां पहुँचकर सत्संग का लाभ उठावें।

कागज की कमी के कारण मनुष्य बनो' के छपने में देर लग जाती है इसलिये पाठक परेशान न हुआ करें।

'मनुष्य बनो' आपको क्या देता है

'मनुष्य बनो' आपको परमदयाल जी तथा महर्षि शिवव्रतलाल महाराज की अनुभवी वाणी द्वारा वह अमूल्य सामिग्री देता है जो आपको सरलता से दूसरी जगह नहीं मिल सकती। जहाँ ज्ञान, ध्यान साधन का भेद बताया जाता है वहाँ आपको जीवन व्यवहार के लिये भी बड़े लाभदायक नुसखे बताये जाते हैं ताकि मनुष्य का यह जीवन भी बन जाय और परमार्थ की प्राप्ति के लिये भी अग्रसर हो जाय। इसलिये 'मनुष्य बनो' को कहानी की तरह पढ़कर न रख दीजिये किन्तु इसे बार बार पढ़िये, विचार कीजिये और फिर अपने व्यवहार में लाने का प्रयत्न कीजिये। तब ही आपको इसने वास्तविक लाभ पहुँचेगा और कुछ दिनों में ही आपको ज्ञात हो जायगा कि आपका जीवन बदल रहा है।

शिशु अवस्था का दिग्दर्शन

हर एक अभ्यासी को यह लालसा लगी रहती है कि समाधि अवस्था प्राप्त हो, अथवा वह यह जाने कि समाधि अवस्था कैसी होती है और उसकी पहिचान क्या है।

मैंने महाराजजी के अनुभवों से जो समझा है वह मैं अपने ढंग से लिख रहा हूं। आइये हम एक हाल के पैदा हुये बच्चे की अवस्था को ध्यान से देखें और उस पर विचार करें ?

हाल के जन्मे बच्चे को ध्यान से देखने पर ज्ञात होगा कि वह जिभ्या से बोलता नहीं है, कान से सुनता नहीं है और आंखों से देखता नहीं है, मगर उसमें जीवन है। उसके शरीर की इन्द्रियाँ अन्दर ही अन्दर अपना काम कर रही हैं। यह क्या अवस्था है ! इस पर ध्यान दीजिये। साधन में तीन बन्द लगाये जाते हैं। समाधिष्ठ पुरुष की भी समाधि की अवस्था में यही दशा होती है। उसे कोई बाहरी ज्ञान नहीं रहता। उसका मन और शारीरिक इन्द्रियां काम नहीं करतीं। यही दशा हमको साधन द्वारा प्राप्त करनी है। छोटे बच्चे को बार बार देखिये। हम को चाहिये कि हम उसे देख कर संसार में रहते हुए जाग्रत अवस्था में भी वही दशा प्राप्त करलें मगर यह इतनी सरल बात नहीं है जितनी कि मालूम होती है। पहिले साधन करके इस अवस्था को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करना है। मन को चारों ओर से घेर कर बार बार अपने केन्द्र पर लाना है और एकाग्र करना है। इसमें भी समय लगता है और इसके एकाग्र करने के भी भिन्न भिन्न उपाय हैं इसलिये प्रति दिन का अभ्यास हमको परम आवश्यक है।

क्रमशः

सन्तमत अनुभव

ले० दासानुदास दुर्गादास "चमन" टिहरी (जिला कांगड़ा हिमाचल प्रदेश)

मालिक की मौज के सहारे पर यह जीवन व्यतीत हो रहा है ! परम-दयाल फकीर चन्द जी महाराज मानवता मन्दिर होशियारपुर के सम्पर्क में आने पर अध्यात्मवाद अर्थात सन्तमत की असलियत ज्ञात हुई। छोटी आयु से ही पूर्व जन्मों के संस्कारों के अन्तर्गत भगवती, शिव व राम आदि को इष्ट मान कर योग-साधना करता रहा। इससे यह हुआ कि जीवन का संघर्ष सहर्ष रूप से चलता रहा, किन्तु अन्तिम खोज जारी रही। महाराज के सत्संग से जब यह पता चला कि अपनी सुरत का स्थान अकह, अगम और अनामी है तो स्वयं ही साधना का दृष्टिकोण बदल गया और इष्ट अनामी पुरुष बन गया। हर मनुष्य अपनी रुचि जोकि तीन गुणों (राजस, तामस, सात्विक) के अधीन है, इनमें बह कर अपना इष्ट चुन लेता है और प्रकृति के अटल नियम के अधीन होकर उसे वैसा ही गुरु मिल जाता है। मनुष्य का आहार-बिहार ही उसके विचारों और कर्म को बनाता है।

सन्तमत में आने से पहले यह सुनता था कि गुरु जब शिष्य को अपना लेता है तब वह पार हो जाता है जैसे जब टिकट लेकर यात्री रेलगाड़ी में बैठ जाता है तब ड्रायवर उसे ठिकाने पर पहुँचा देता है। इस शरीर को यह युक्ति ठीक न जच सकी। जब कई सत्संगियों की रहनी को देखा गया तो वह काफी उलटी थी। फिर महाराज का आदेश व मालिक की मौज के सहारे पर अनुभव में से गुजरने लगा।

तब ज्ञान हुआ कि गुरु ठीक मार्गदर्शन करवाता है, किन्तु बिना सुमिरन, ध्यान और भजन के सच्चा मालिक प्राप्त नहीं होता। जब शब्द खुल जाता है तब पूर्ण अनुभव रूपी ज्ञान शुरू हो जाता है किन्तु चौबीस घन्टे मनुष्य शब्द और प्रकाश में नहीं रह सकता अतः यह साधन करते हुए भी यदि इष्ट

देखो पृष्ठ ३५

जस्सू स्वामी की कथा

जस्सू स्मामी का जन्म स्थान गँगा यमुना के बीच में बतलाया जाता है। यह खेती का काम करते थे और साधुओं की सेवा और भजन भाव में मस्त रहते थे। जो कुछ खेत से मिलता सब साधुओं को खिला देते। यह साधु सेवा को मुख्य समझते थे।

एक बार इनके घर चोर आये और बैलों को खोल ले गये परन्तु ईश्वर की कृपा से फिर वैसे ही बैल खूँटी से बँध गये। चोर समझते थे कि स्वामी बैलों के न होने से दुखी होंगे और उनकी खेती का काम बन्द होगया होगा। दूसरी बार जब फिर आये उन्हीं बैलों को खूँटी से बँधा पाया। आपस में कहने लगे "बैल तो हम चुरा लेगये थे। इन्हें कौन लाकर बाँध गया!" जब अपने घरों को गये वहां भी बैल बँधे पाये। बहुत ही घबराये और फिर स्वामीजी के स्थान पर आये। बैल यहाँ भी ज्यों के त्यों बैठे हुए जुगाली कर रहे थे : अब तो वह बहुत ही डरे। कोई बात समझ में नहीं आई। घबराहट में आकर बैलों को खोला और स्वामीजी के पास आये। उन्होंने आकर दूसरे बैलों को जिन्हें वह देख गये थे वहां नहीं पाया। स्वामीजी के पाँव पर गिर कर अपने अपराध के क्षमा करने के लिये प्रार्थना करने लगे और उसी दिन उनके चेले होगये। फिर चोरी का नाम नहीं लिया और साधु होगये।

दोहे

दाता दानी देवता, नहीं गुरू सम कोय।
ज्ञाता ज्ञानी चतुर नर, गुरुकृपा से होय॥
भव सागर अति गहिर है, सूझे वार न पार।
गुरु खेवटिया जब मिलै, खेइ लगावें पार॥

प्रवचन

परम दयाल फकीरचन्दजी महाराज

(मानवता मन्दिर २५-११-१९७३)

दया गुरु क्या करूँ वर्णन अहा हा हा ओ हो हो हो ।
लगाया मोहि निज चरनन ,, ,,
दिखाया घट में इक गुलशन ,, ,,
सुनी जहां शब्द धुन घन घन ,, ,,
वहाँ से आगे पग धारन ,, ,,
करत रही सुरत गुरु दर्शन ,, ,,
चरन पर वार रही तन मन ,, ,,
खेलती सुन में संग हंस न ,, ,,
भँवर होय सतपुर धाउं ,, ,,
परम राधास्वामी हुई पावन ,, ,,

आज यह अहाहाहा ओहो हो हो का हुजूर महाराज का शब्द सुना। मैं सोचता हूँ कि लोग ऐसे शब्द क्यों गाते हैं। कल भी के० जे० सहाय की चिट्ठी आई उसका भी यह भाव था जो इस शब्द में है। मैं स्वयं इस भाव में रहा हूँ और अपने ऐसे ही बने हुये शब्द गाया करता था। यह भाव कब पैदा होता है? जब आदमी अपने प्रेम में आकर अपने अन्तर कोई वस्तु देखता है। सूर्य चन्द्रमा या गुरु मूर्ति को देखता है तो उसको बड़ी खुशी मिलती है उसी खुशी से उसके अन्तर एक भाव पैदा होता है जिसको या तो वह पद्य में या गद्य में कहता है। हुजूर महाराज ने यह शब्द लिख दिया और के०जे० सहाय ने अन्तर में लिख दिया। यह भाव अज्ञान से निकलता है। जब तक सत वस्तु का ज्ञान नहीं होता तब तक ऐसा भाव पैदा होता रहता है। के०जे० सहाय ने कल अपनी चिट्ठी में में लिखा कि बाबाजी ! मैं अभ्यास में था। मेरे अन्तर प्रकाश हुआ। मैंने

॥ मनुष्य बनो ॥

बहुत बड़ा सूर्य देखा । उसमें आप विराजमान थे । आपको देख कर इतनी
खुशी हुई कि जीवन में पहिले कभी नहीं हुई और मेरी प्रशंशा के उसने
पुल बाँध दिये । क्या मैं उसके अन्तर गया था ? यह सब उसके विश्वास
का ही खेल था । यह जितने भी भक्त हैं—कोई राम का भक्त, कोई कृष्ण
का भक्त, कोई गुरुभक्त, यह जितने लोग उनकी प्रशंशा करने वाले हैं,
यह असलियत से दूर हैं और अज्ञान में हैं मगर जब तक कोई अज्ञान में
नहीं आयेगा उसका ज्ञान की ओर या असलियत की ओर आना भी कठिन
है । इसलिये मैं इनका खंडन नहीं करता । यह भी एक अवस्था है । अज्ञान
में आनन्द है । के० जे० सहाय एक समझदार आदमी हैं । काफी त्रेत:
पाता है मगर यह बाहरी दुनिया है । अन्तर में असलियत
है । मैंने जो उसकी चिट्ठी का

॥ मनुष्य बनो ॥

गुरु तो तेरे घट के बासी, तू गुरु घट में रहता है।
तू ने भूल भरम में प्यारे, यह सिद्धान्त भुलाया क्यों ॥
बाहर भीतर गुरु है व्यापक, कहीं राजा कहीं परजा है।
चेले में गुरु गुरू में चेला, नहीं तो उमे चिताया क्यों ॥
आप आप को आप पहिचानो, राधास्वामी की है बानी।
कहा और का नेक न मानो, यह बानी बिसराया क्यों।

श्री के०जे० सहाय भूल भरम में हैं। वह समझता है कि उसके अन्तर
लाल सूर्य में बड़े भारी प्रकाश में मैं हजारों साधुओं और महात्माओं को
सत्संग करा रहा था लेकिन मैं तो नहीं था।
दयालदास ! यह मंजिल या अवस्था बड़ी कठिन है। इस
ठहर सकते। क्यों ? मैं कोई

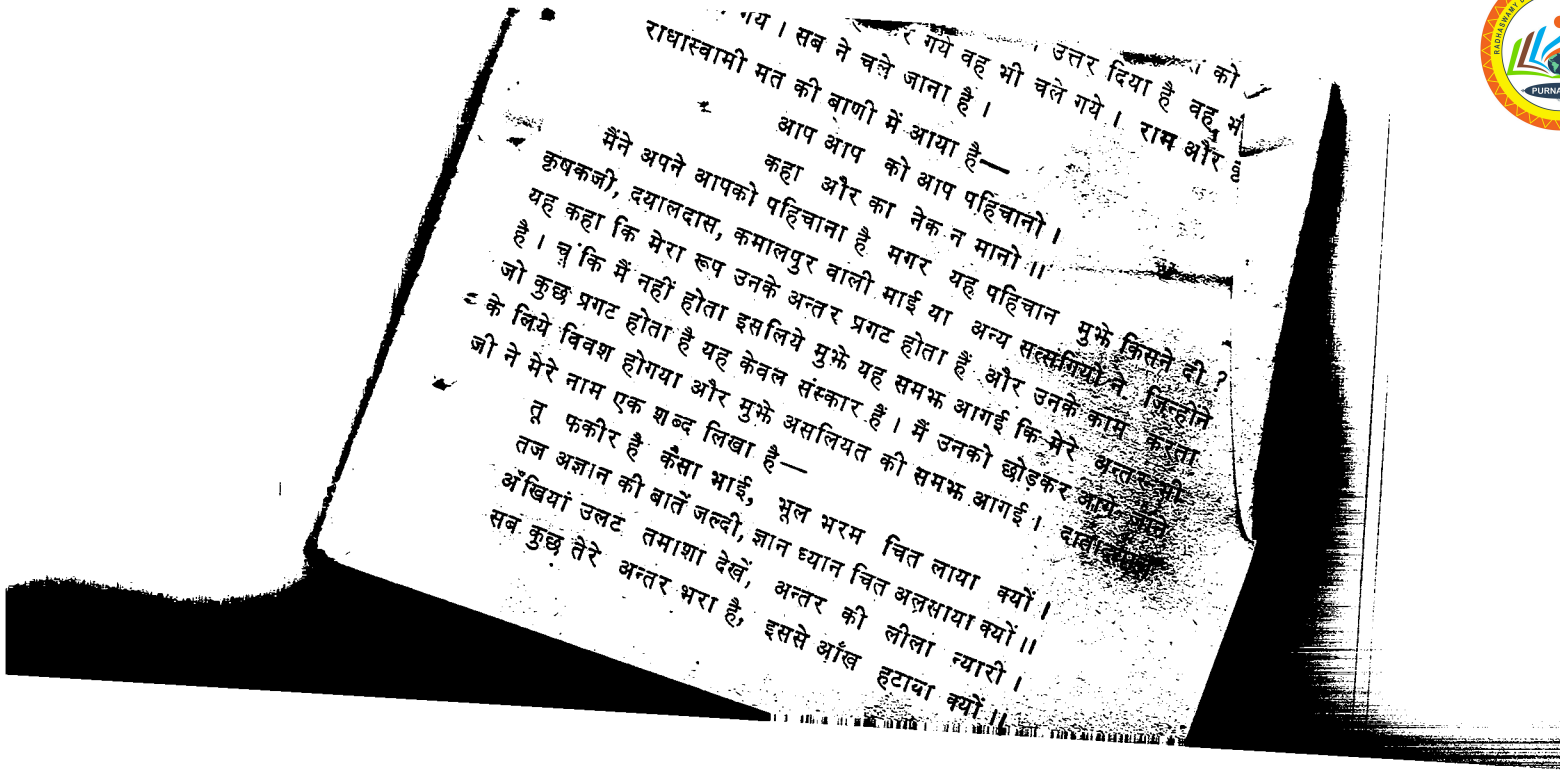

... गये । सब ने ... गये वह भी चले गये । ... उत्तर दिया है वह ... । राम और ... को ... चले जाना है ।

राधास्वामी मत की बाणी में आया है—

आप आप को आप पहिचानो ।
कहा और का नेक न मानो ॥

मैंने अपने आपको पहिचाना है मगर यह पहिचान मुझे किसने दी ? कृषकजी, दयालदास, कमालपुर वाली माई या अन्य सत्संगियों ने, जिन्होंने यह कहा कि मेरा रूप उनके अन्तर प्रगट होता है और उनके काम करता है । चूंकि मैं नहीं होता इसलिये मुझे यह समझ आगई कि मेरे अन्तर भी जो कुछ प्रगट होता है यह केवल संस्कार हैं । मैं उनको छोड़कर आप जानने के लिये विवश होगया और मुझे असलियत की समझ आगई । दाता दयाल जी ने मेरे नाम एक शब्द लिखा है—

तू फकीर है कैसा भाई, भूल भरम चित लाया क्यों ।
तज अज्ञान की बातें जल्दी, ज्ञान ध्यान चित अलसाया क्यों ॥
अँखियां उलट तमाशा देखें, अन्तर की लीला न्यारी ।
सब कुछ तेरे अन्तर भरा है, इससे आँख हटाया क्यों ॥

महा... नहीं
अवस्था में तुम अभी न...
हूँ और न तुम्हारे भविष्य के बारे में ...
ठहर सकता इसलिये मैं कहता हूं कि तुम सभी ...
सकते । मैं जानता हूं कि सुरत सहारा चाहती है इसलिये सह...
मगर जिसका सहारा लो उसको पूर्ण मानो । श्री के०जे० सहाय ने मुझे
गुरु माना हुआ है और वह अपने हाल मुझे लिखता रहता है । उसका
मुझ पर विश्वास है । पिछले पत्र में मैंने उसे लिखा था कि तुमको अन्तर
में परिचय मिल जायगा । चूंकि उसका मुझ पर विश्वास है इसलिये
उसके विश्वास ने उसे सब कुछ दिखाया । ऐसे ही हुजूर महाराज का
स्वामीजीं पर विश्वास था । उनके विश्वास ने ही उनको उत्साह और आनन्द
दिया और उन्होंने अहा हा हा ओहो हो हो का शब्द लिखा । इसलिये
जिस समय उन्होंने यह शब्द लिखा उस समय उनकी पूर्ण ज्ञान की अवस्था
नहीं थी ।

यह तो है अन्तरीय बात । अब संसार की बात सुनो । यदि तुम यह
विश्वास रक्खोगे कि मालिक जो करेगा अच्छा करेगा और जो होरहा है
ठीक होरहा है, तो तुम्हारे विश्वास और आस का यह परिणाम होगा कि
...रा काम अवश्य बन जायगा । मगर हम दुविधा में पड़ जाते हैं कि

कि हाय ऐसा न होजाय । चूंकि यह मनोमय जगत है इसलिये इस सोचने के अनुसार ऐसा होना लाजिमी है । यह विश्वास की बात है । यदि आदमी आशावादी रहे और शुभ संकल्प के नियम पर चले तो उसका लोक भी और परलोक भी बन जाता है । कभी निराश न हो । बस आप लोगों को एक नुक्ता बता दिया है कि यह सारा खेल अपने ही संकल्प का है । कभी आप कह देते हैं कि हमने तो अच्छा ख्याल लिया और आशावादी भी रहे मगर वह हुआ नहीं । यह ठीक है मगर पहिले जो निराश या नकारात्मक विचार लिये हुए हो और उनके जो संस्कार पड़े हुए हैं उनका फल भी तो भोगना पड़ेगा । जो वस्तु एक बार पैदा होगई वह अपनी अभिव्यक्ति (जहूर) अवश्य करेगी और उसके बाद समाप्त होगी । यह प्रकृति का नियम है । अपने किये हुए और सोचे हुए कर्म का फल अवश्य मिलता है । अतः संसार के लिये और परमार्थ के लिये आशावादी रहो ।

आज आपको यह प्रमाण दे दिया है कि आदमी को जब तक पूर्ण ज्ञान नहीं होता वह अपने अन्तर के दृश्यों को देख कर खुश होता है । कोई उस खुशी को पद्य में प्रगट करता है कोई गद्य में । यह खुशी के० जे० सहाय को अपने अन्तर से मिली । हम बूंद है वह समुद्र है । यह शरीर कुल ब्रह्माण्ड का नमूना है । यदि मनुष्य को गुरु मिल जाय और उसके सत्संग से बात उसकी समझ में आजाय तो समुद्र तो उसके अपने ही अन्तर लहरा रहा है, उसको वह खजाना मिल जाय । हुजूर महाराज ने जिस खुशी को इस शब्द में प्रगट किया है यह स्वामीजी महाराज ने नहीं दी किन्तु उनके अपने ही अन्तर थी । उसको उनके ही विश्वास और प्रेम ने प्रकट किया क्योंकि यह प्राकृतिक नियम है जैसा ख्याल वैसा हाल । जैसी करनी वैसी भरनी ।

मैंने कहा कि जिस समय हुजूर महाराज ने यह शब्द लिखा उस समय उनकी अवस्था पूर्ण ज्ञानी की नहीं थी । मेरे साथ यह बीती है । ओ कट्टर और पक्षपाती पंथाई है उनको मेरे यह शब्द बुरे लगेंगे लेकिन जो कुछ मैंने कहा है उसका प्रमाण देता हूँ ।

जब हुजूर महाराज स्वयं गद्दी पर आये तो उन्होंने अपनी बाणी में कहा है कि सत्गुरु शब्द स्वरूपी राधास्वामी दयाल हैं और उनके चरण प्रकाश हैं। बाहर के गुरु की यह ड्यूटी है कि वह चेले को सच्चे सत्गुरु अर्थात शब्द और प्रकाश से मिला दे। यही दशा मेरी हुई। मैं भी ऐसे ही दातादयालजी की प्रशंशा किया करता था जैसे हुजूर महाराज ने की है।

मैं सत्गुरु की जगह काम करता हूँ और सच्चा ज्ञान देता हूँ। जो गुरुमुख और साध गुरु हैं वह जीवों को विश्वास और प्रेम दिला कर चिताते हैं। इसीलिये राधास्वामी मत में साध गुरु हैं जो सत्संग कराकर जीवों को उभारते हैं। यदि यह लोग न हों तो सत्गुरु क्या करेगा। यह लोग फील्ड तैयार करते हैं और उनमें से फिर आदमी छट जाते हैं। पंथ या गद्दी को चलाने के लिये और शिक्षा है और मेरा मिशन और है। मेरा मार्ग राधास्वामी धाम या निज स्वरूप या अकाल से मिलने, उसको जानने पहिचानने का है। मैं बन्दी छोड़ हूँ मगर सब तो बन्द छुड़ाना नहीं चाहते। वह तो साँसारिक आनन्द चाहते हैं। मैं सांसारिक आनन्द नहीं दे सकता। मैं जीव को शान्ति देता हूँ। आनन्द और वस्तु है तथा शान्ति और वस्तु है। जो स्वार्थ है वही परमार्थ है मगर एक साँसारिक है और दूसरा आत्मिक है।

जो सांसारिक आनन्द चाहते हैं उनको मेरी शिक्षा इतनी लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकती। इसलिये धन्य है वह महात्मा या गुरुमुख जो जीवों को उत्साहित और आशावादी विचार देकर उनके जीवन को उभारते हैं। इसलिये सांसारिक दृष्टिकोण से साध गुरुओं हंसों और भक्तों का दर्जा आनन्द देने के लिये मुझसे बड़ा है। मेरा काम जीवों को केवल धुरधाम पहुँचाना है।

मेरे विचार में यह जितना भी खेल है सब सुरत का है। मैं अब इस आयु में शरीर और मन की परवाह न करते हुये उस राधास्वामी दयाल या अकाल पुरुष जो त्रिलोकी से परे है उसके साथ प्रेम रखता

हूँ और वही मेरा इष्ट है। जब भक्ति और प्रेम के शब्द सुनता हूँ तो तुमने कई बार देखा होगा कि मेरे हाथ स्वयं जुड़ जाते हैं और सिर झुक जाता है। ऐसा क्यों होता है ? मैं न तो जानबूझ कर हाथ जोड़ता हूं और न सिर नबाता हूँ। सुरत जब अपने अन्तर में शरणागत होती है तो शरीर और मन स्वयं दीनता के प्रभाव में आकर गतिमान हो जाते हैं। इसलिये तो मैं कहता हूँ कि मनुष्य की सुरत ही मुख्य चीज है। ऐसे ही बाहर की दुनियाँ में भी होता है। जब तुम किसी प्रेमी आदमी से मिलते हो तो तुम प्रेम भाव में आजाते हो और उससे चिपट जाते हो। यदि वह छोटा है तो उसका मुँह चूम लेते हो या उसको गोद में लेलेते हो या उसे छाती से लगा लेते हो। यदि बड़ा है तो उसके पांव छूते हो या उससे लिपट जाते हो। इसलिये यह सारा खेल सुरत का है।

जहां तक हमारी सामाजिक सभ्यता और नियमों का सम्बन्ध है इनमें सुरत इतना काम नहीं करती। इनमें मन और बुद्धि काम करते हैं। किसी को धन्यवाद देना या किसी को राम राम कहना या सलाम वालेकम या सत् श्री अकाल कहना या किसी की चापलूसी करना यह सब मन का खेल है। जहाँ सुरत का खेल है वहां अदब आदाब या बड़ा पन या छोटा पन नहीं रहता। यदि राजा का लड़का और निर्धन का लड़का आपस में सुरत से प्रेम करते हैं तो अदब आदाब बड़ाई छुटाई इनमें समाप्त हो जाती है। तुम देखो कि मालिक का एक सच्चा प्रेमी कई वार मालिक को तू कह कर पुकारता है मगर सांसारिक व्यौहार में तू के शब्द को बुरा समझा जाता है। हुजूर महाराज ने इस शब्द में प्रेम के भाव में आकर जो कुछ कहा वह सुरत का खेल है। यदि सुरत में दीनता है तो अदब स्वयं साथ रहता है। यदि सुरत में केवल प्रेम ही है और दीनता नहीं है तो उसकी जो बोल चाल है वह भिन्न होगी। हुजूर महाराज के शब्द में प्रेम के साथ दीनता भी है। कई आदमी मालिक या गुरु या अपने इष्ट से प्रेम तो करते हैं मगर दीनता नहीं होतीं तो वह प्रेम की तरंग में ताने भी दे देते हैं।

मेरी शिक्षा और संगत से आप लोगों का घृणा, द्वेष जायगा, आपके भ्रम जायेंगे और अध्यात्म मिलेगा। दुनियांदारों के लिए सबसे पहले सुमिरन और ध्यान है। मैं अभी तक भी सुमिरन ध्यान करता रहता हूँ। शरीर और मन को छोड़ कर सुरत के साथ शरणागत होता रहता हूँ मगर साथ ही शरीर और मन भी शरणागत हो जाता है।

सत्संग

परम दयाल फकीरचन्द जी महाराज

(मानवता मन्दिर, होशियारपुर)

प्रेम प्रीति घट धार, आर्ती राधास्वामी कीजै।
मन माधो तन बास, सुरत चरनन में दीजै॥
थाल उमंग और जोत, विरह घट परगट कीजै।
सतगुरु हुये दयाल, दान फिर शब्द मिलीजै॥
शब्द शब्द चढ़ गगन, सुन्न में अमृत पीजै।
कमल द्वार धस जाय, सेत पद आस धरीजै॥
महासुन्न का घाट, दया सतगुरु से लीजै।
भँवर गुफा धुन बाँसुरी, आश्चर्य सुनीजै॥
सत्त नाम धुन बीन, ताहि में सूरत दीजै॥
अलख अगम दरबार, देख घट प्रेम भरीजै॥
सुरत सुहागिन हुई, काल बल सब ही छीजै।
धोका सब ही मिटा, पुरुष संग छिन छिन रीझै॥
संत कृपा जब होय, सुरत अपने घर सीझै।
सतसंग करो बनाय, अमी का छींटा कीजै॥

राधास्वामी नाम, हिये में आन धरीजै।
रोम रोम मन मगन, आरती पूरन कीजै॥

ऐ मेरे जीवन के बनाने वाले ! मुझे होश आया। ख्याल हुआ कि इस दुनियां का कोई आधार है। मैं उसकी खोज में निकला। मौज या कर्म या प्रभु इच्छा मुझे दातादयाल महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज के चरणों में ले गई। उन्होंने मुझे संत मत या राधास्वामी मत की शिक्षा दी। चूंकि मेरे लिये यह एक नई चीज थी इसलिये मैंने यह प्रण किया था कि इस लाइन पर चलूंगा और जो मेरा अनुभव होगा वह संसार को बता जाऊँगा।

आज यह शब्द पढ़ा गया। अपने आप से पूछता हूँ कि ऐ फकीरचन्द ! तुमको क्या मिला ? सुना करता था कि नाम से आदमी भवसागर से पार हो जाता है। नाम से यह मिलता है और नाम से वह मिलता है। नाम से परमात्मा मिलता है। नाम से मुक्ति मिलती है। मैंने जिस ढग से समझा है और जिस ढँग से मैंने अमल किया है उस ढँग से मुझे शान्ति मिली। जिस ढँग से बाणियों ने बताया है उस ढँग से तो शायद किसी को ही शान्ति मिली होगी। क्यों ? क्योंकि बाणियों की समझ हर एक को नहीं आती है। हाँ, बाणी के आकर्षण से लाखों आदमी इस मत में शामिल होगये। किसी को क्या कहूँ इस बाणी की समझ मुझे भी नहीं आती थी।

अपने अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि बिना नाम के किसी का भी उद्धार नहीं हो सकता। वह नाम है अन्तर में शब्द की धुन। शरीर में अनेक प्रकार की धुनें होती हैं। शरीर के अन्तर नसों से आवाज निकलती है। डाक्टर टोंटी लगाकर सुनते हैं और रोग का निदान करते हैं। वैद्य नब्ज टटोल कर रोग को पहिचानते हैं। मन की गति से भी शब्द पैदा होते हैं। सहस्राकार, ओंकार, रारंकार और सोहंकार आदि। यह मन के शब्द हैं। मुझे न गुरु बनने की लालसा है और न मान आदर की इच्छा है। यदि लालसा है तो केवल यह है कि मैं अपने आदि घर या अपने आप में चला जाऊँ। उस अवस्था में चला जाऊँ जो अवस्था कि शरीर में आने से पहिले थी। वह अवस्था क्या है ?

तुम अपने घर पहुँच जाओ तो यह असम्भव है। पहिले मैं भी सहसदलकँवल त्रिकुटी, सुन्न और महासुन्न के दृश्य देखा करता था। जब मुझे मन की समझ आगई तो अब मैं शब्द और प्रकाश को पकड़ता हूँ। अब प्रश्न पैदा होता है कि एक आदमी शब्द अभ्यासी है। क्या उसका आवागमन समाप्त जायगा ? यह प्रश्न क्यों पैदा होता है ? इसलिये कि मैंने भी इन स्थानों या श्रेणियों से गुजरते हुए घंटा, शंख, रारंग सारंग, ओ३म् की धुनि और बीन बहुत सुने। बड़ी बड़ी शिद्धि शक्ति आईं मगर इन सब के सुनने के बाद भी मुझे शान्ति नहीं मिली। हाँ, आनन्द मिला मगर मानसिक रूप से मालिक से मिलने और आवागवन के समाप्त होने का खब्त नहीं गया। वह क्या है ?

जब मुझे यह ज्ञान होगया कि सहसदल कँवल से लेकर महासुन्न तक सब मन का खेल है तब खब्त गया। अब मैं शब्द और प्रकाश में रहता हुआ उस वस्तु को ढूँढता रहता हूं जो प्रकाश में रहती हुई प्रकाश को देखती है और शब्द में रहती हुई शब्द को सुनती रहती है मगर मुझे उसकी थाह नहीं मिलती। गति होने से शब्द पैदा हो जाता है। चेतन्य शक्ति पैदा हो जाती है। सुरत बन जाती है। शरीर बन जाते हैं। फिर प्रलय और महा-प्रलय हो जाती है और सब कुछ समाप्त हो जाता है। केवल निजस्वरूप शेष रह जाता है। जीवन क्या है ? तत्व के मिल जाने पर शरीर बन जाते हैं। कहीं स्थूल शरीर, कहीं मन का शरीर, कहीं आत्मा का शरीर और कहीं सुरत बन जाती है। जब यह शरीर नाश हो जाते हैं तो फिर कोई आवागवन नहीं है। इसलिये नाम से आवागमन समाप्त होजाता है। मगर होगा तब जब तुमको असलियत का ज्ञान हो जायगा और तुम अपनी सुरत को शब्द में लय करके स्वयं अनुभव कर लोगे।

सुरत शब्द दोऊ अनुभव रूपा। तू तो पड़ा भरम के कूपा ।।

सुरत शब्द योग इष्ट पद नहीं है। इष्ट पद अनुभव ज्ञान है। जब तक सुरत मन से अलग होकर अपने अन्तर शब्द ब्रह्म या पार ब्रह्म या राधा-

जब तक मनुष्य स्वामी के आगे दीन नहीं होगा तब तक उसका आवागवन का भ्रम समाप्त नहीं होगा । जीवन क्या है ?

लब खुले और बन्द हुये यह राजे जिन्दगानी है ।

जो लोग आवागमन को नहीं मानते, उनके ऐसा समझने से क्या उनका आवागमन नहीं होगा ? होगा । क्यों ? उनके अन्तर जो भावनायें या वासनायें हैं वह उनको सत मानते हैं । यद्यपि उनको आवागवन का भ्रम नहीं लेकिन फिर भी जब उनका शरीर छूटेगा तो उनकी वासनाओं के अनुसार उनको जन्म लेना पड़ेगा । अब एक कहता है कि आवागवन नहीं है यद्यपि उनको यह ज्ञान भी है कि मन के संकल्प हैं नहीं मगर भासते हैं मगर वह मन की वासनाओं में ग्रस्त है तो उसको भी जन्म लेना पड़ेगा चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय का आदमी हो ।

प्रेम प्रीति घट धार, आरती राधास्वामी कीजै ।
मन माधो तन बास, सुरत चरनन में दीजै ॥

वहाँ तक तो तुम जा नहीं सकते इसलिए पहिले बाहर के गुरु से प्रेम करो । उसके सत्संग में उसके बचन सुनो और उन पर क्रियान्वित हो । यह पहिली सीढ़ी है । जब तुम अन्तर में गुरु स्वरूप को देखोगे तो तुम्हारे अन्तर ज्योती जलेगी । जब मन के दर्जे पूरे हो जायेंगे तब फिर शब्द को ओर चलोगे । इसलिए सन्तों ने सर्व साधारण के लिए पहिले सुमिरन और ध्यान का आदेश दिया है । चलते रहो । किसी न किसी दिन पहुँच जाओगे । यह एक दिन का काम नहीं है । मन को एकाग्र करने के लिए बाहर के गुरु की सेवा है । उसके प्रेम से तुम्हारा मन पवित्र हो जायगा । जिसने बाहरी गुरु से प्रेम नहीं किया उसके अन्तर में रूप प्रगट होना महा कठिन है । मैं बहुत ऊँचा चला गया हूँ इसलिए ऊँची बात कहता हुँ । मेरे वश की बात नहीं है । अपना अनुभव कहता हूँ और अपना कर्म भोगता हूँ ।

शब्द शब्द चढ़ गगन, सुन्न में अमृत पीजै ।
मान सरोवर बास, हंस संग खेल खिलीजै ॥

इसलिये मैंने आप लोगों के लिये रास्ता सुगम कर दिया है। अन्तर में जो घन्टा शंख आदि शब्द होते हैं उनको सुनते सुनते सुन्न हो जाओ या लय हो जाओ और अपने मन को एकाग्र करो। मन को एकाग्र करने से आनन्द या मस्ती मिलती है। मैं उसको अमृत समझता हूँ। सन्तों का यदि कोई और अमृत होगा तो मुझे पता नहीं।

मेरे बचपन के विवाह के कारण मेरा मन एकाग्र नहीं होता था। दाता दयाल जी महाराज ने मुझ पर बड़ी दया की और मुझे एक तम्बूरा ले दिया और कहा कि इसको कान लगाकर बजाया करो। इसमें तुमको सारे शब्द सुनाई देंगे और मैं सुना करता था। इस ढँग से उन्होंने मेरे मन की चंचलता दूर की। अभिप्राय तो मन को एकाग्र करने से है। मुझे लगन अवश्य थी और प्रेम भी बहुत था मगर मेरा मन एकाग्र नहीं होता था। इस ढँग से मस्त होकर घण्टों तक तम्बूरा बजाया करता था। किसी के लिये कोई बिधि है और किसी के लिये कोई। यह गुरु ही भली प्रकार जानता है।

अज्ञानियों के लिये ज्ञान का अधिकार है और बीमारों को ही स्वास्थ्य का अधिकार है। पापियों ही के लिए सन्त का अवतार होता है। मुझे जब अपना शुरू शुरू का जीवन याद आता है तो दातादयाल जी के अहसान याद आते हैं। जीव की प्रकृति को देख कर गुरु किसी को कार्य में लगाता है, किसी को भक्ति बताता है और किसी को ज्ञान और विचार में लगाता है। मुझे भक्ति मार्ग की ओर लगाया। मेरे छोटे भाई को यह नाम दिया 'जीवन का अर्थ काम और काम का अर्थ जीवन' है। उसने अठारह अठारह घन्टे दफ्तर का काम किया। इससे वह उन्नति कर गया। यह है गुरु मत और यह है सच्चे गुरु की शिक्षा। गुरु भली प्रकार जानता है कि कैसे जीव की गढ़त की जाय।

पिछले समय में एक दम शब्द अभ्यास नहीं दिया जाता था। केवल एक बात बता देते थे। फिर दूसरी फिर तीसरी बताते थे। अब समय बदल गया। अब एक ही बार बता देते हैं। तुम एक एक सीढ़ी चढ़ो अन्यथा गिर जाओगे। मैं अभी तक भी पहिले सुमिरन ध्यान किया करता

हूँ। फिर प्रकाश और शब्द में जाता हूँ। फिर ऊपर जाता हूँ। जब आगे कोई थाह नहीं मिलती तो फिर उत्थान हो जाता है और शरीर में आ जाता हूँ।

मानसरोवर बास, हंस संग खेल खिलीजै।

हंस के बारे में मुझे समझ नहीं आई। मैं तो हंस को (**Correct understanding**) सही समझ का नाम देता हूँ। मैंने भी अपने अन्तर में बड़े बड़े दृश्य देखे। चन्द्र, सूर्य, तालाब और हंस देखे। लेकिन वह सब समाप्त होगये। अब मेरा अनुभव बदल गया है। क्यों? क्योंकि कुछ वर्ष हुये मुझे एक आदमी मिला और कहने लगा कि बाबा जी! मैं अभ्यास करता था तो मेरे अन्तर एक महात्मा का रूप प्रगट हुआ। मैं उसको जानता नहीं था। वहाँ अन्तर में एक तालाब था। उसका जल बड़ा निर्मल था। उसमें बतखें भी बड़ी सुन्दर थीं। उस तालाब के किनारे वह साधु था। उसने मुझे कहा कि तुम मेरे पास आ जाओ। मैं उस साधु की खोज में दहली, आगरा, व्यास और कई जगह गया मगर मुझे वह न मिला। फिर मुझे किसी ने कहा कि तुम होशियारपुर में बाबा फकीर के पास जाओ। जब मैं यहाँ आया तो मैंने देखा कि आप वही महात्मा हैं। अब मैं तो उस को जानता नहीं कि वह कौन है और न मैं उसके अभ्यास में गया! इससे मैं इस परिणाम पर आया कि यह सारे खेल मनुष्य के अपने मन के हैं।

डाक्टर आई० सी० शर्मा कहता है कि सन् १९५२ में किसी महात्मा का रूप प्रगट हुआ। उसने कहा कि तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारा इसी जन्म में काम बन जायगा। उस समय न वह मुझे जानता था और न मैं उसे जानता था। जब वह फिर १९६२ ई० में मुझे दहली मिला तो उसने बताया कि आप ही मेरे अन्तर प्रगट हुये थे लेकिन मुझे कोई पता नहीं। उसका मुझ पर बड़ा भारी विश्वास है कि वह बजाय राम राम या किसी और नाम के जपने के दयाल फकीर, दयाल फकीर जपता है।

मेरे अनुभव में यह बात आई है कि जिस प्रकार का ख्याल या संस्कार मनुष्य के दिमाग में बैठ जाता है और वह उस पर विश्वास कर लेता है तो

उसी से उसका काम बन जाता है मगर तुम तो आज यहां कल वहां विश्वास बदलते रहते हो। इसका अर्थ यही है कि तुम्हारा विश्वास कहीं नहीं है। इसलिये तुमको कुछ नहीं मिलता। जो आदमी एक ख्याल में मर मिटता है वह अवश्य सफल होता है।

हंस क्या है ? मन के अणु या परमाणु। उनका रूप मछली जैसा होता है। हमारे वीर्य के कीटाणु का रूप भी मछली जैसा होता है। अभ्यास के समय हमारी सुरत जब वहाँ जाती है तो वह उनको देखती है। मेरे विचार में वह है हंस। मैंने जो समझा वह कहता हूँ मगर मुझे कोई दावा नहीं।

कमल द्वार घस जाय सेत पद आस धरीजै।

महासुन्न में जब मन एकाग्र हो जाता है और सुरत आगे चलती है तो आगे श्वेत रंग का प्रकाश दिखाई देता है। मैं उसे सेतपद समझता हूँ। संतों का यदि कोई और सेत पद हो तो मुझे पता नहीं।

महासुन्न का घाट, दया सतगुरु से लीजै।

महासुन्न से निकलने के लिये सतगुरु की दया लीजिये। हुजूर महाराज जी का इस दशा से क्या भाव है मुझे पता नहीं लेकिन सतगुरु तो आप सत्संगी हैं जिन्होंने मुझे महासुन्न से निकाला। महासुन्न क्या है ? मन का एकाग्र होना या निर्विकल्प समाधि। जब से मुझे यह ज्ञान हुआ कि मेरा रूप आप लोगों के अन्तर प्रगट होता है और मैं नहीं होता तो मैं महासुन्न से आगे जाने के लिये विवश होगया। आप लोगों के अनुभवों ने मेरी आँखें खोल दीं और मैं महासुन्न से आगे निकल गया। अब मैं केवल शब्द और प्रकाश में रहता हूँ। सुमिरन और ध्यान करता हूँ।

भँवरगुफा धुन बांसुरी, आश्चर्य सुनीजै।
सतनाम धुन बीन, ताहि में सूरत दीजै।।

जब आदमी मन को छोड़ जाता है तो अन्तर में नाम के कुल दर्जे हर एक आदमी के नहीं खुलते। यदि न भी खुलें तो भी कोई हानि नहीं। तुम्हारी प्रकृति के अनुसार तुम्हारे अन्तर में शब्द होंगे। उदाहरण रूप से कई आदमियों में जन्म से ही पुरुषत्व शक्ति नहीं होती और कई में बहुत अधिक होती

है। किसी को सुगंध बिल्कुल आती ही नहीं और किसी को बहुत आती है। ऐसे ही संतों की दशा है किसी में कोई शक्ति विशेष होती है और किसी में कोई गुण अधिक होता है। लेकिन परम संत वह है जिसमें प्रकृति की कुल शक्तियाँ (समता **Balance**) में होती हैं। इसलिये यदि किसी की अभ्यास की सम्पूर्ण श्रेणियाँ नहीं खुलतीं तो कोई हानी नहीं हैं। अभिप्राय तो ज्ञान और अनुभव प्राप्त करने से है। आज और अभ्यास है कल और होगा और परसों को और होगा। ज्यों ज्यों प्रकृति बदलती जायगी,अभ्यास भी बदलता जायगा। सदा एक दशा नहीं रहेगी। इसलिये पूरे गुरु की महिमा है जिस के सत्संग से तुम्हारे भ्रम और शंकायें दूर हो जाती हैं। यदि निचले चक्र, स्थान या दर्जे नही खुलते तो न सही। अभिप्राय तो वृत्तियों के निरोध करने से है। पहिले मन की फिर आत्मा की वृत्तियों का निरोध करो ताकि तुम्तुरे भ्रम न रहें और तुम बेफिक्री और शान्ति को प्राप्त कर जाओ। शान्ति ही इष्ट पद है।

अलख अगम दरबार, देख घट प्रेम भरीजै।
सुरत सुहागिन हुई, काल बल सब ही छीजै॥

हमारे अन्तर जो प्रश्नोत्तर उठते हैं यह काल का बल है। अब वह समाप्त हो गये। काल है मन, बुद्धि और आशायें। दाता दयाल जी कहा करते थे कि समझदार लोगों के लिये केवल छः माह का कोर्स है और मैं कहता हूँ कि केवल छः दिन का कोर्स है। हमने अपने आप को उस अवस्था में ले जाना है जहां हमको कोई चिन्ता न सताये और बस।

धोका सबही मिटा, पुरुष संग छिन छिन रीझै।
संत कृपा जब होय, सुरत अपने घर सीझै॥

संत क्या दया करते हैं? मुझ पर तो यह दया हुई कि जो बात मेरी समझ में नहीं आती थी वह मुझको समझा दी।

खेल खिलाऊँ सुगम सुहेला, सुरत शब्द मत गाऊँ।
काल जाल से तू अब बाचे, विधि विचित्र बतलाऊँ॥

कर सतसंग विवेक से गुरु का, गुरु दयाल हितकारी ।
साधू बन के साध ले जुगती, जा भूले से पारी ॥

दातादयाल जी महाराज मुझे समझाने की बहुत कोशिश करते थे मगर बात मेरी समझ में नहीं आती थी क्योंकि वह सैन बैन (संकेत) में बात करते हैं । सन्तों ने आज तक बात को पर्दे में रक्खा । यदि किसी को बता भी दिया तो उसका मुँह बन्द कर दिया लेकिन मैंने पर्दा उठा दिया ।

सत्संग करो बनाय, अमी का छींटा लीजै ।
राधास्वामी नाम हिये, में आन धरीजै ॥

अमी क्या है ? मस्ती, आनन्द और बेफिक्री । यदि तुमको मेरे सत्संग में आने से मस्ती, आनद और बेफिक्री नहीं मिलती तो क्या लाभ आने से । मत आया करो । सत्संग से बुद्धि निर्मल होती है और चेतनता आती है । मेरे सत्संग में लोग चेतन्य रहते हैं । कई जगह लोग सत्संग में सो जाया करते थे । गुरु के नाम को हृदय में रक्खो । एक तो जुबान से नाम का जपना है और एक हृदय में नाम को रखना है ।

रोम रोम मन मगन, आरती पूरन कीजै ॥

आर्ती पूर्ण तब होगी जब तुमको बेफिक्री, बेगमी और शान्ति आजायेगी । यही आर्ती का फल है । जब मन मग्न होजाता है तो अचिन्त और शोक रहित हो जाता है । फिर न आवागमन की चिन्ता रहती है और न मालिक को मिलने की चिन्ता रहती है ।

सबको राधास्वामी ।

जिन ग्राहक बन्धुओं ने अभी तक पिछले वर्ष का भी चन्दा नहीं भेजा है वह कृपा करके इस वर्ष के चन्दे सहित शीघ्र भेज दें ।

ऋणबद्ध संसार

[ले० दुर्गादास, चण्डीगढ़]

यह सच्ची घटना है। अभी अभी कुछ दिनों के प्रेमी श्री तरसेम लाल जी ने मुझे सुनाया। किस तरह इस जीवन में घटनायें होती रहती हैं, जो यह सिद्ध करती हैं कि यहाँ पर लेन देन का भुगतान होता है। जीव का सब के साथ सम्बन्ध लेन देन से है।

तहसील कारड़ (चन्डीगढ़ के पास) में एक गाड़ी में कुछ किसानों ने आपस में सलाह की कि हिसार में पशु मेला लगने वाला है। वहाँ के बैल बड़े मशहूर हैं। चलो वहां से अपनी आवश्यकता के लिये मोल लें। सम्मति करने पर चारों किसान दूसरे दिन प्रातः चलने को तैयार होगये और चारों रुपया लेकर चल पड़े और हिसार मेले से हर एक किसान ने दो दो बछड़े मोल लिये। दिन में वहां आराम किया। दूसरे दिन प्रातः ही अँधेरे में चल पड़े। थोड़ी दूर चलने पर जब प्रकाश हुआ तो वह क्या देखते हैं कि आठ बछड़ों के बजाय वहाँ दस बछड़े इनके आगे आगे चल रहे थे। वह बड़े हैरान हुये कि यह दो बछड़े कहाँ से आये।

सबने निश्चय किया कि इनको बेच दें और रकम आपस में बाँट लें। लेकिन एक बूढ़े किसान ने राय दी कि ऐसा न करो क्योंकि हमारा कोई हक इन बछड़ों पर नहीं है। हां यह मालुम करना चाहिये कि किन बछड़ों के साथ यह दो बछड़े आए हैं। उसके मालिक को ही यह दोनों बछड़े मिलने चाहिए।

यह राय सबने मान ली और यह उपाय सोचा कि हर एक किसान अपने अपने बछड़े लेकर अलग अलग रास्ते से चलें और दोनों बछड़ों को यहां पर ही छोड़ देना चाहिए। फिर यह देखना चाहिए कि किन बछड़ों के साथ यह बछड़े जाते हैं। उसी को यह मिल जाने चाहियें।

ऐसा ही किया गया। चारों ने अपने अपने बछड़े साथ लिये। कोई उत्तर, कोई दक्खिन, कोई पूरब, कोई पच्छिम को चल पड़ा। यह दो बछड़े संतोख सिंह नामी किसान के पीछे पीछे चल दिये। संतोख सिंह को इनका मालिक मान लिया गया।

संतोखसिंह अपने चारों बछड़े लेकर घर पहुंचा और अपने मन में निश्चय किया कि इनमें से दो को बेच दूँ। एक तो उनमें से थोड़े दिन बाद मर गया। दूसरे के लिये ग्राहक आगये। इसका मूल्य ५००) रु० पहिले ठहरा। पेशगी ले ली। दूसरे दिन शेष रकम देने का वाइदा करके ग्राहक चला गया।

इसी रात संतोख सिंह को स्वप्न हुआ। स्वप्न में बछड़ा कहता है कि मैंने तुम्हारे ८०) रु० केवल पिछले जन्म के देने हैं। इसलिये तुमने ८०) रु० से अधिक रकम नहीं लेनी। किसान की जब आँख खुली तो वह अचंभे में रह गया। उसने स्वप्न को सच समझा।

जब सुबह ग्राहक आया तो संतोख सिंह ने उसे कहा कि मैं ८०) रु० बछड़े का मूल्य लूंगा। लोग यह बात सुनकर हैरान हुये तो संतोख सिंह ने सारा हाल सुनाया और ८०) रु० लेकर बेच दिया।

ऐसे ऋण से कोई बच नहीं सकता। ऋण तो देना ही पड़ेगा। बैल बन कर, घोड़ा बनकर, इससे बचाव नहीं है।

परमदयाल फकीरचन्द जी महाज के नाम
महर्षि शिवब्रतलाल जी का पत्र

प्यारे फकीर भाई ! राधास्वामी

दुनियाँ तो दुनियाँ ही है। द्वन्द का स्थान है। दुनियाँ की ओर ध्यान (तवज्जह) दोगे, द्वन्द है। दुनियां से ध्यान को हटा लोगे तो न कहीं दीन है न दुनियां है। सारी बात ध्यान की है।

—:o:—

साधन का प्रयोजन यह है कि अन्तर बाहर एक समान हो जाय। साधन कोई स्थायी अवस्था नहीं है। साक्षात्कार कर लेना ध्येय है।

—:o:—

गुरु तुम्हारे अन्दर है और वह स्वयं साक्षात्कार का रूप है। जब बात समझ में आगई, उसी के अनुसार उसका अभ्यास हो और जीवन अनासक्ति में आसक्ति और आसक्ति में अनासक्ति बन जाय। कर्म करता हुआ अकर्म और अकर्म रहता हुआ कर्मी कहलाये। स्वतत्रता में बन्धन और बन्धन में स्वतन्त्रता है।

—:o:—

ऐसा व्यक्ति अभ्यास करे न करे, एकसा है। अभ्यास को लोग कठिनाई से छोड़ सकते हैं। जब आदमी बेकार हो जाता है आप ही आप अभ्यास होने लगता है। उसमें क्या हानि होती है। इसमें परिश्रम नहीं है। सुरत से शब्द का सुनना है और बस ! इससे अधिक और कोई काम नहीं है।

—:o:—

रूप का समझ लेना और इस पर स्थित होजाना साक्षात्कार है। सुरत से शब्द को सुनो यह ठीक है लेकिन जिस स्थान का शब्द सुनते हो उसका प्रभाव शरीर और मन में बाकी रहे। फिर उसका उतार नहीं होगा।

उठ्ठे बैठे खड़े उताने।
कहैं कबीर हम वही ठिकाने ॥

कहाँ का तन ! कहाँ का मन ! जब आत्मा की असलियत ज्ञात हो गई तो भ्रम मिट जाता है और मनुष्य का जीवन क्रियात्मक हो जाता है।

—:o:—

बाहर गुरु चेले का मिलाप कुछ नहीं। अन्तर में मिलाप ठीक है। सुरत चेला है। शब्द गुरु है। वह मिले और मिलाप होगया। फिर चाहे संसार व्यवहार होता रहे, विघ्न पैदा नही करता।

—:o:—

बाहर से सहारा इस वास्ते लिया जाता है ताकि अन्दर सहायता मिले। तुम निस्संदेह सुरत रूप हो लेकिन शब्द रूप भी हो। शब्द सुरत है और सुरत शब्द है। दोनों एक हैं। साधन में दोनों अलग अलग हैं। उद्देश्य में दोनों एक हैं।

—:o:—

तन मन की ओर से सुधि रहे या बेसुधि रहे, इसका विचार क्यों किया जाय। विचार अपने केन्द्र पर रहे। वहां से न हटे। यही चेतन समाधि और सहज समाधि है।

—:o:—

तुम्हारा नीचे इसलिये उत्थान होता है कि अभी तवज्जह (सुरत) केन्द्र पर स्थित नहीं हुई। साधारण रूप से जीवन व्यतीत करो। अभ्यास मामूली हो। अधिक जोर न दो। न परिश्रम करो। तब यह बात समझ में आयेगी।

—:o:—

तुम आओ या न आओ, एकसी बात है। मैं स्वयं तुम्हारे अन्दर हूँ। इसलिये अन्दर सवाल करो, वहीं उत्तर मिलेगा।

—:o:—

धाम में आओगे, लोग फकीर का दर्शन करेंगे। न आओगे तो तुम्हारी खुशी। मैं यदि पंजाब की ओर आया, स्वयं तुमसे मिलूँगा। फकीर के दर्शन का बड़ा फल होता है। मुझे भी वह फल मिल जायगा। मैं तुमको बाहरी आँखों से देख लूँगा। तुम मुझे बाहरी आँखों से देख लोगे।

—:o:—

खोल का विचार कल्पित है। विचार से केन्द्र तय करलो। जीवन एक तरह का बन जाय। फिर कहीं खोल नहीं है। समता की अवस्था रहे। कबीर शब्दावली से नित्य यह शब्द पढ़ लिया करो :—

सन्तो सहज समाधि भली।
जा दिन दया भई सतगुरु की, सुरत न अन्त चली।

—:o:— (शेष असल में देख लो)

प्रसन्नता अप्रसन्नता दोनों कल्पित हैं। जब तक मन नीचे रहता है, दुख है। जब ऊपर चढ़ जाता है, प्रसन्नता है। जब समता की अवस्था हो जाती है तो फिर न प्रसन्नता है और न अप्रसन्नता है।

—:०:—

इस पत्र का पूरा उत्तर कबीर के शब्द में मिलेगा जिसका ऊपर संकेत किया गया है। यदि बात फिर भी समझ में न आवे तो मुझे लिखो। मैं उत्तर दूँगा।

१३ नौम्बर १९७३ 'शिव'

प्रवचन

परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज

(मानवता मन्दिर होशियारपुर १-४-७३)

कर घट में प्रीतम का दर्शन।

प्रीति रीति की राह कठिन है, नहिं जाने संसारा।
प्रेम प्रीति जब मन में आवे, सूझे सार असारा॥
आवे प्रीति कहाँ चली जावे, करे कहाँ वह वासा।
घट उपजे घट से नहिं जावे, समझे गुरुमुख दासा॥
सत संगत बिन प्रीति न आवे, परिचय बिन परतीती।
बिन परतीत भक्ति सब निष्फल, सीख संतमत रीती॥
प्रेम प्रीति परतीत पदारथ, भक्ति और निरवाना।
गुरु की दया बिना नहिं मिलते, यह सिद्धान्त पुराना॥
प्रीति के मग में पग को धारा, घट में प्रीतम दरसा।
राधास्वामी दया से काज बनाया, चरन कमल जब परसा॥

आज दहली से कुछ आदमी आये हुये हैं। यह उपरोक्त शब्द दातादयाल महर्षि शिवव्रतलाल जी का है। यह शब्द मेरे अपने लिये है। किसी को क्या कहूँ, मैं अपने आपको समझाता रहता हूँ। वह इस शब्द में कहते हैं कि जिस वस्तु की तुमको खोज है, जिसके लिये तुम गंगा या दूसरे तीर्थों पर जाते हो या व्यास, आगरा या होशियारपुर जाते हो, उसके दर्शन तुम अन्तर में करो। मैं अपने आप से पूछता हूँ कि किस प्रीतम के दर्शन हम घट में करें? कोई बाबा सावनसिंह जी महाराज को प्रीतम समझता है, कोई बाबा फकीर को, कोई राम को, कोई कृष्ण को और कोई देवी देवता को अपना प्रीतम मानता है। यह असलियत मुझे आप लोगों के द्वारा ज्ञात हुई कि वास्तव में प्रीतम कौन है।

जब आप लोगों के अन्तर मेरा रूप प्रगट होता है तो आप मुझे अपना प्रीतम मानते हैं। लेकिन मैं तो होता नहीं फिर प्रीतम कौन है? हे मानव। तेरा अपना ही विश्वास, तेरी अपनी ही श्रद्धा और तेरा अपना ही रूप तेरा प्रीतम है। यदि मैं लोगों के अन्तर जाता होता तो मैं मान लेता कि आपका प्रीतम फकीरचन्द है। और भी कोई महात्मा किसी के अन्तर नहीं जाता। सबने हम लोगों को अपने जाल में फँसाया हुआ है। उस प्रीतम से मिलने के लिये शुरू शुरू में उसका कोई न कोई रूप मानना पड़ता है। अन्त में आप ही प्रीतम है और आप ही प्रेमी है। इसलिये सन्तों ने भक्ति मार्ग, प्रेम और प्रीति को मुख्य रक्खा है।

ज्ञान मता मत वार, तेरे भले की कहूँ।

बिना रूप के तुम अपने आप को अपने आप में ठहरा नहीं सकते। मनुष्य हमेशा मनुष्य के साथ ही प्रेम करेगा इसलिये ऋषियों ने जो संसार वालों को आइडियल दिया है शिव जी का या विष्णु का या किसी और का, वह मानव रूप में ही दिया है ताकि आदमी प्रेम कर सके। इसलिये एक रूप को मानो और उससे प्रेम करो। वह रूप तुमको परिचय देगा। यह व्यास बैठा हुआ है। इसके अन्तर मेरा रूप प्रगट होता था। यह इसके मन ने ही इसको परिचय दिया। परिचय से मनुष्य का विश्वास दृढ़ होजाता है।

कर घट में प्रीतम दर्शन ।
प्रीति रीति की राह कठिन है, नहिं जाने संसारा ।

हम सब दुनियां के सुखों और अपनी आशाओं को पूरा करने के लिये प्रीति करते हैं । लोग वहाँ प्रीति करते हैं जहाँ से उनका मतलब सिद्ध होता है । अपने निज घर जाने की प्रीति में सांसारिक स्वार्थ नहीं होता । सांसारिक वस्तुओं के लिये जो तुम प्रीति करते हो उससे तुमको सांसारिक वस्तुयें तो मिल जायेंगी मगर उस प्रीति से तुम अपने असली घर नहीं जा सकते । प्रीतम के साथ निष्काम प्रेम होता है । वह प्रेम कुछ माँगता नहीं । वह तो देता है मगर मेरे पास जो लोग आते हैं वह तो कुछ माँगते हैं । संसार में जो निष्काम सेवा नहीं करता वह इष्ट पद पर नहीं जा सकता । मैं दाता दयाल के दरबार में गया था । मैंने जीवन भर उनसे दुनियाँ की कोई चीज नहीं मांगी । निष्काम सेवा करने वाला कोई होता है ।

प्रीति रीति जब मन में आवे, सूझे सार असारा ॥

जब मनुष्य के अन्तर सच्चा प्रेम पैदा होजाता है और साथ ही उसको किसी पूर्ण पुरुष का सत्संग मिल जाता है तब वह इष्ट पद की ओर चलता है । जिसको सत्संग नहीं मिलता, वह अधूरा ही रह जाता है । तुम दहली से आये हो । सेवा करते हो । मैं अपनी डियूटी पूरा कर जाना चाहता हूँ । प्रेम तुम्हारे मन के अन्तर से ही पैदा होता है और मन ही में समा जाता है ।

आवे प्रीति कहाँ चली जावे, करे कहाँ पर बासा ।
घट उपजे घट से नहिं जावे, समझे गुरुमुख दासा ॥

तुम्हारे अन्तर से ही प्रेम उत्पन्न होता है और अन्तर में ही लय हो जाता है । इस भेद को कोई गुरुमुख ही समझ सकता है । मुझे स्वयं यह समझ नहीं आती थी । लोगों से मुझे यह समझ मिली । कोई अमरीका में, कोई इन्गलैण्ड में, कोई भारत में मुझसे प्रेम करते हैं । जब उनके अन्तर प्रेम पैदा हो जाता है और मेरा रूप बन जाता है तो उनके काम बन जाते हैं । मुझे जानकारी नहीं होती । इससे सिद्ध हुआ कि जितना किसी के

अन्तर प्रेम पैदा होगा, उसको उतना ही लाभ होगा। सब तुम्हारा अपना ही श्रद्धा और विश्वास है।

थोड़े दिन हुये मध्य प्रदेश से एक आदमी की चिट्ठी आई। वह सारा कुटुम्ब मुझ पर विश्वास करता है। मुझसे प्रेम करते हैं और मेरा ध्यान करते हैं। वह लिखता हैं कि मेरे छोटे भाई ने बी० ए० की परीक्षा देने के लिये फार्म भेजना था और फीस भी भेजनी थी लेकिन वह लड़का अपने गाँव से दूर २० मील पर खेत में पानी लगा रहा था। कागज घर पर थे और फार्म भेजने की अन्तिम तारीख थी। जब उसको याद आई कि मैं अब फार्म नहीं भेज सकता तो वह आपको याद करने लगा। दूसरे दिन जब वह गाँव में वापिस आया तो उसने कहा कि मैं बी०ए० की परीक्षा में दाखिल नहीं हो सकता, तो उसको घर वालों ने बताया कि कल तुमने स्वयं आकर अपना फार्म भेजा है और फीस भी भेज दी है। अब वह आदमी लिखता है कि बाबा जी ! आपने मेरे भाई का रूप धारण करके फार्म भेजा है।

मैं तो वहाँ गया नहीं और न मुझे पता है। वह कौन था ? वह उसका अपना ही प्रेम था। उसकी अपनी ही परतीत और प्रीति थी। तुम्हारे साथ परिचय होते रहते हैं। लेकिन मुझे इल्म नहीं होता। मैं भी जानता हूँ कि स्पष्ट कहने से कोई आदमी पैसा नहीं देता है दुनियाँ धोके से देती है कि हां मैं गया था और तुम्हारा काम किया था मगर मैंने प्रण किया था कि अपना अनुभव कह जाऊंगा। मुझे इसकी परवा नहीं कि लोग पैसा नहीं देते। यदि कुदरत को यह स्वीकार है कि मेरे विचार संसार में फैलें तो वह स्वयं प्रबन्ध करेगी और मंदिर चलेगा लेकिन मैं झूठ बोलने को तत्पर नहीं।

जिस जगह प्रेम करना मनुष्य के भाग्य में होता है कुदरत उसको वहाँ के परिचय देती है और इसको वहाँ लेजाती है। आप देखो दाता दयाल का रूप मेरे अन्तर प्रकट हुआ था। ऐसे ही लोगों के अन्तर मेरा रूप प्रकट होता है !

बाहर में प्रेम करना सरल है । अब मैं बैठा हुआ हूं । तुम मुझसे प्रेम कर सकते हो, खाना खिला सकते हो मगर अन्तर में मूर्त्ति बनाकर उससे प्रेम करना और उसको सजाना या कपड़े पहिनाना बहुत कठिन है । हिन्दुओं में तो और प्रकार की भक्ति है । जब लोगों की अन्तर की भक्ति छूट गई तो ऋषियों ने बाहर में मूर्त्ति पूजा का ख्याल संसार को दिया ताकि यह बाहरी पूजा करते करते एक दिन अन्तरमुखी हो जाँय । यदि अन्तर में मूर्ति से प्रेम बन जाय तो तुम्हारा सांसारिक जीवन बन जायगा । सिद्धि शक्ति आजायेगी और यदि कोई पूर्ण गुरु मिल जाय तो तुम्हारा परमार्थ भी बन जायगा ।

संत संगत बिन प्रीति न उपजै, परचै बिन परतीती ।

सन्त की संगत के बिना तुम अन्तर में प्रीति नहीं कर सकते । सत्संग से ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् तुम अन्तर में प्रेम कर सकोगे अन्यथा तुम बाहर में ही किसी न किसी के साथ प्रेम करते रहोगे । वह लोग भाग्य-शाली हैं । जिनको परिचय मिलते रहते हैं । परिचय से विश्वास दृढ़ हो जाता है और बुद्धि निश्चयात्मक हो जाती है । अन्तर में अपने इष्ट की मूर्ति बनाकर उसको सजाना और उससे प्रेम करना पहिली भक्ति है । जिसने बाहर में प्रेम नहीं किया वह अन्तर में नहीं कर सकता । इसीलिये बाहर में मूर्त्ति पूजा या गुरु की पूजा और सेवा की प्रणाली आरम्भ की गई थी । भोजन करते समय अपने इष्ट का ध्यान करो और अपने विचार से उसको खिलाओ । कपड़े पहिनते समय अपने ख्याल से उसको कपड़े पहनाओ और अपने ख्याल से उसे हार पहनाओ । यह पहिला साधन है । इस संसार में जो देता नहीं, उसको कुछ मिलता नहीं । बिना त्याग के कुछ नहीं मिलता । तुम अपनी स्त्री के लिये सुन्दर वस्त्र और आभूषण लाते हो तो वह भी तुम्हारी सेवा करती है और अपना तन और मन तुम्हारे अर्पण कर देती है । दातादयालजी महाराज कहा करते थे कि मुफ्ती हमेशा मुफ्ती ही रहता है, वह काजी नहीं बन सकता । तुम देखो मां बच्चे के लिये कितना बलिदान करतीं है । स्वयं कष्ट उठाती है मगर बच्चे को सुख

पहुंचाती है। संसार में हर जगह कुरबानी (समर्पण) करनी पड़ती है। शिष्य गुरु के लिये कुरबानी करता है। गुरु भी शिष्य के लिये कुर्बानी करता है। यह संसार ही ऐसा है।

प्रेम प्रीति परतीत पदारथ, भक्ति और निरवाना।
गुरु की दया बिना नहीं मिलते, यह सिद्धान्त पुराना ।।

इस प्रेम और प्रतीत से तुमको भक्ति मिलेगी और तुम्हारा जीवन सुख से व्यतीत होगा। यदि यह ज्ञान होजाय कि मैं अपने आपको ही पूजता था, तो तुमको निर्वाण प्राप्त हो जायगा मगर गृहस्थियों को यह ज्ञान जल्दी प्राप्त होता नहीं है।

गुरु की दया क्या है ? मैं अपने आपसे पूछता हूँ कि तुम गुरु बन गने, तुम किसी पर क्या दया कर सकते हो ? मेरी दया यह है कि जो कोई दुखी या अशान्त मेरे पास आता है उसको यह शुभ भावना देता हूँ कि यह सुखी होजाय और इसको शन्ति मिले। इससे किसी को शान्ति मिलती है या नहीं, मुझे पता नहीं मगर लोग कहते अवश्य हैं। दूसरे मेरी दया यह है कि मैं असली भेद को खोल खोल कर समझा देता हूँ। मैंने कोई पर्दा नहीं रखा। दूसरा कोई गुरु यदि और दया कर सकता है तो मुझे पता नहीं।

मैं अज्ञानी था लेकिन दाता दयाल ने मुझे छाती से लगाया। यदि मैंने कोई गलत बात भी कह दी तो मेरी हां में हां मिलाई जैसे तुम लोग अपने बच्चों की हाँ में हाँ मिलाते हो और उनको सहारा देते हो। ऐसे ही मैं भी दुखियों को सहारा देता हूँ। मैं यह गुरु की दया समझता हूं। दूसरों का मुझे पता नहीं। विचार में बड़ी शक्ति होती है। जो प्रेम के विचार को ग्रहण करता है उस पर दया होती है। दूसरे पर नहीं।

अमरीका से एक विधवा स्त्री की चिट्ठी आई है। वह लिखती है कि मैं आपको प्रायः अपने कमरे में सोफे पर बैठे हुये देखती हूँ और आपसे बातें करती हूँ।

उसने कहीं मेरा नाम सुना होगा। मैं जब विरजीनिया गया तो उसने

मुझे चिट्ठी लिखी कि मैं एक गरीब विधवा हूँ। आपके पास आने को मेरे पास किराया नहीं है। आप यदि दया करें तो यहां आकर मुझे दर्शन देवें। मैं सौ मील कार में उसके मकान पर गया। जब मैं वहां गया तो वह फूलों का हार लेकर दरवाजे पर खड़ी थी। उसके हृदय में प्रेम था। और मेरे हृदय में भी प्रेम और सहानुभूति थी। उस प्रेम और सहानुभुति के संस्कार उसके दिमाग पर बैठ गये और अब वही संस्कार मेरा रूप उसके सामने प्रगट करते हैं। यह जितना खेल है यह सब तुम्हारे अपने श्रद्धा विश्वास का फल है। जितना अधिक प्रेम करोगे उतना ही अधिक उसका फल मिलेगा।

प्रीति के मग में पग को धारा, घट में प्रीतम दरसा।
राधास्वामी दया से काज बनाया, चरन कमल जब परसा॥

तुमने जब अपने अन्तर में प्रेम पैदा किया तब तुमको प्रीतम दृष्टि-गोचर हुआ। तुम स्वयं ही प्रेमी हो और स्वयं ही प्रीतम हो। तुम्हारा अपना आपा ही प्रीतम है। हर एक आदमी वहां नहीं पहुँच सकता। यह श्रेणियां हैं। समय लगता है। पाँच वर्ष के लड़के को युवा होने में समय लगता है। इसलिये पहिले किसी की निष्ठा बनालो। जितना गुड़ डालोगे उतना ही मीठा होगा।

कहे 'नानक' बिन आपा चीन्हें, मिटे न मन की काई।

स्वामीजी महाराज ने कहा है—

आप आपको आप पहिचानो, कहा और का नेक न मानो।

मगर यह मार्ग बहुत कठिन है। मुझे अब समझ आई है कि वह चरण कमल जो है वह हमारे अन्तर में प्रकाश है या सावित्री है।

गायत्री के विषय पर इस बार बैसाखी पर बोलूंगा। 'गा' का अर्थ गाना और त्री का अर्थ तीन अर्थात् तीन प्रकार का गाना। अन्तर में स्थूल, सूक्ष्म और कारण प्रकृति की गति से आवाज पैदा होती है। वह तीन प्रकार का गाना है। मन्दिरों में घंटा शंख बजाये जाते हैं। ओ३म् की धुनि होती है और आर्ती गाई जाती है मगर जब तक अपने इष्ट के

साथ प्रेम नहीं है तुम गा नहीं सकते। चूंकि मन में स्वार्थ की पूजा है इसलिये प्रेम पैदा नहीं होता। इसलिये सबके लिये गायत्री मंत्र नहीं है। इस अनुभव के आधार पर मैंने 'मनुष्य बनो' की आवाज उठाई है। जब तक मन निर्मल नहीं है, साधक हानि उठाता है। नामउसके लिये है जिसमें हेरा फेरी नहीं है। आजकल तो गुरुओं ने अपनी गद्दियां बढ़ाने और चेलों की संख्या बढ़ाने के लिये हर एक को नाम दान देना शुरू कर दिया है।

सब से पहिले नेक बनो। अपने आचरण को ठीक करो और अपने साँसारिक कर्तव्य को पूरा करो। फिर जब तुम्हारा समय आयेगा तुम आगे जा सकोगे।

यदि मन गन्दा है तो पहिले उसे निर्मल करो। मन को निर्मल करने को सत्संग है। रेडीयेशन का नियम काम करता है। स्त्री के पास बैठने से काम उत्पन्न होता है साधू के पास बैठने से साधन का तरीका मिलेगा और सन्त के पास बैठने ने शान्ति मिलती है।

गजल

(महर्षि शिवब्रतलालजी महाराज)

शमां बज्म रास्ती के सच्चे परवाना बनो।
होश पाकर तुम न अब बेअक्ल दीवाना बनो।।
सुनलो दिल के कान से, पीरेमुगाँ का तुम पयाम।
मय पीओ जाम व सबू लो, आप मयखाना बनो।।
माप करते रहते हो, दुनियाँ के कारोबार की।
मैं यह कहता हूं कि दिल में आके पैमाना बनो।।
मजहब व मिल्लत के झगड़ों में पड़े हो रात दिन।
मस्त क्यों होते नहीं, कहता हूं मस्ताना बनो।।
जिन्दगी बेकार है बेसूद है बेलुत्फ है।
सुनलो मुरशिद की नसीहत, मर्द फरजाना बनो।।

(पृष्ठ ४ से)

अनामी है तो वह मौज के सहारे अपनी रहनी धीरे-धीरे बना लेता है जहाँ दुख-सुख जीवन-मरण कुछ नहीं। केवल शान्ति ही शान्ति हैं। ऐसा आदमी शब्द सुनते हुए भी अशब्द अवस्था में रहता है। प्रकाश देखते हुए भी बिना प्रकाश के है। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसा मनुष्य जीवन मुक्त अवस्था में रहता है। प्रकाश व शब्द सुरत को वहाँ पहुँचाने का कारण है, क्योंकि परमतत्व से मौज द्वारा हरकत होने से शब्द और प्रकाश प्रगट होता है और हमारी सुरत उसी का एक अंश है। महर्षि शिवव्रत लाल जी वर्मन एक स्थान पर संकेत करते हैं कि शब्द और प्रकाश का साधन भी प्रत्येक मनुष्य के लिये नहीं। कई मालिक की मौज के सहारे पर निष्काम साधन व अभ्यास कतेर हुए भी जीवनमुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। प्रत्येक मनुष्य कर्म के अधीन मालिक की इच्छा के साथ है, किन्तु ऐसे मनुष्य सिवाय मानवता की सेवा के जोकि अध्यात्मवाद के अनुकूल होगी अन्य कोई काम नहीं करते। उनका यह काम भी मौज के सहारे पर ही होता है।

सन्तों ने इसी कारण राम, कृष्ण आदि अवतारों को काल का रूप कह कर पुकारा है। जो मनुष्य किसी भी ध्येय के लिए व्यक्तिगत के लिए या सामूहिक वर्ग के लिये कोई अनिष्ठ कार्य करता या करवाता है वह जरूरी तौर पर कर्म बन जाता है चाहे वह लाखों व्यक्तियों के भले के लिये ही क्यों न हो। बहुधा राम का इष्ट करने वाले व्यक्ति उस परमतत्व को प्रायः अनुभव में प्राप्त कर लेते हैं। परमसन्त कबीर ने राम को ही सार माना। इसी प्रकार परमसन्त तुलसीदास जी हाथरस वालों ने भी राम को परम इष्ट मानकर घट रामायण की रचना की। सन्त पलटू साहिब जी ने भी राम को ही अपनाया, किन्तु यह राम दशरथ का बेटा नहीं बल्कि इसका ख्याल परमतत्व से है। आज का संसार वर्णात्मक शब्दों में खो गया है। सन्तमत अपने ख्याल को परमोच्च अर्थात सार तत्व की ओर संकेत करता है। जिस मनुष्य का किसी परमपुरुष के सत्संग द्वारा ऐसा ख्याल बन जाए और पूर्ण प्रेम हो जाए उसका शब्द खुल जाता है।

शब्द ने खंड ब्रह्माडों की रचना की है। वह माया से रहित है अतः उसको सुनने वाले और प्रकाश देखने वाले व्यक्ति का अनुभव खुल जाता है। परदयाल जी ने इस शरीर के सूक्ष्म संस्कार को पूरा करने के लिए सत्संग और नामदान की आज्ञा दे रखी है। कुछ सत्संग करने के उपरान्त फिर खामोशी आ गई थी। अब ख्याल आ रहा है कि प्रारब्ध को भोगना भी अपने वश में नहीं। मौज के आश्रित होने पर वही सारा काम करती व करवाती है। यदि अन्त में सुरत अपने निज भंडार में समा भी जाये तब भी क्या बनेगा। इसलिये परम सन्तों ने मानव की सेवा को महत्व दिया है। वही वस्तु सब में है जो एक में है अतः सत्संग व मानव सेवा ही मुख्य साधन हैं।

परमदयाल जी का आभारी हूँ कि उन्होंने इस अबोध को गले लगाया है।

दयाल सिंह जी महाराज

नेकी का रास्ता लो, और नेक काम करलो।
दामन को दिल के मकसद के मोतियों से भरलो॥
नेकी का इस जहाँ में, मिलता है नेक समरा।
नेकी का नेक समझो, हर वक्त तुम नतीजा॥
बेखौफ बन के नेकों की, राह को पकड़ लो।
छोड़ो बदी को नेकी को, अपने मन में भरलो॥
गुरुदेव की हिदायत हरदम, रहे नजर में।
मक्खी शहद की बनना, फूलों के रस को भरलो॥
कहते हैं राधा स्वामी, सतवक्ता उनको मानो।
माया भरम को छोड़ो, सतगुरु को मन में भरलो॥

महर्षि शिवव्रतलाल कृत हिन्दी पुस्तकें

आध्यात्मिक पुस्तकें

सम्पूर्ण महारामायण	७)
श्री भद्भगवद्गीता भाग १	१)२५
,, भाग २	१)२५
नानक योग ३ भाग	४)
राधास्वामी योग ६ भाग	७)
कबीर योग प्रथम भाग	२)
,, द्वितीय भाग	१)७५
,, तृतीय भाग	१)७५
कबीर आद्य ज्ञान प्रकाश	२)
शरणागति योग	)७५
उपासना योग	१)
धर्म रहस्य	१)
आनन्द योग प्रकाश	२)५०
Light on Anand yog	३)
सत्य संदेश	३)
सहज भक्ति	१)
आत्मिक प्रायमर	१)
हाल योग (उर्दू)	२)५०

अत्यन्त शिक्षाप्रद, चित्ताकर्षक उच्चकोटि के उपन्यास

शाही पति परायण	२)
शाही भूत	१)५०
शाही डाकू	२)७५
शाही लकड़हारा	३)७५
शाही भिखारी	३)५०
शाही जादूगरनी	२)५०
आबदार मोती	२)२५
तावदार मोती	२)२५
झलकदार मोती	२)५०
सिरहदार मोती	१) ५
शाहवार मोती	१)२५
रंगदार मोती	२)५०
दलदार मोती	२)७५
कजदार मोती	२)५०
चमकदार मोती	२)२५
हिमक मोती	२)
ओ३म नाविल	३)
शाही भक्तिनी	२)२५
शिवजी की अद्भुत कहानी	१)५०

पाठ तथा गाने के शब्द

शिव शब्द सागर सजिल्द	६)
फकीर भजनावली	१)
शब्द गुंजार भाग १, २, ३, ४	१)५०
शब्दों का गुटका	)५०
नन्दू भाई की साखी	१)५०
पिंगल साखी	१)-
सन्त कबीर की साखी	२)२५
कबीर गूढ़ शब्द व्याख्या	१)
कबीर शब्दावली	)७५
नैय्यरे आजम	१)५०
रहिमन नीति दोहावली	)७५

Regd. No. A—808

महारामायण सजिल्द	७-००
गीता भाग १ व २	२-५०
नानक योग	४-००
राधास्वामी योग	६-००
कबीर योग भाग १,२,३	५-२५
कर्मयोग रहस्य	१-००
Light on Anand Yog	३-००
आनन्द योग प्रकाश	२-५०
कबीर आद्य ज्ञान प्रकाश	२-००
कबीर की साखी	२-२५
पंथ सन्देश	३-००
शब्द गुन्जार भाग १,२,३	४-५०
विचार-शक्ति अथवा मनोविज्ञान	१-५०
विचार दर्पण	१-००
कबीर भजनावली	१-००
जीवन सुधार	१-२५

शिक्षाप्रद, रोमांचकारी मोती और ...ती सिलसिले के उपन्यास हैं

नई पुस्तकें

निर्वाण	१-००
सहज भक्ति	१-००
उस घर की खोज	१-००
अनुभव ज्ञान प्रकाश	१-००
हिसक मोती	२-००
ज्ञान योग	१-५०

ग्राहक सं० 397.

श्रीमान् C. Gajraj Mysker Hindi Pandit
Rathode Building
Pochamma Gali
Jumerat Bazar
Nizamabad (A.P.)

सम्पादक व प्रकाशक—
देवीचरन मीतल
लेखराज नगर,
अलीगढ़।

Printed by S.C. Mital, Dayal Printing Press, Aligarh